इकाई 17 साम्राज्यवाद

इकाई की रूपरेखा

17.1 परिचय

17.2 साम्राज्यवाद की परिभाषाएँ

17.2.1 साम्राज्य बनाम साम्राज्यवाद

17.2.1 साम्राज्यवाद बनाम उपनिवेशवाद

17.3 साम्राज्यवाद के रूप

17.4 साम्राज्यवाद के सिद्धांत

17.4.1 आर्थिक व्याख्याएँ

17.4.2 गैर–आर्थिक व्याख्याएँ

17.5 साम्राज्यवाद की अवस्थाएँ

17.5.1 वाणिज्यवाद और प्रारंभिक व्यापारिक साम्राज्य

17.5.2 औद्योगिक पूँजीवाद – मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद

17.5.3 वित्तीय पूँजीवाद

17.6 वह साम्राज्य जहाँ सूर्य कभी अस्त नहीं होता

17.7 सारांश

17.8 अभ्यास

17.1 परिचय

यह इकाई साम्राज्यवाद को एक धारणा और एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में समझाने का प्रयास है। कई विद्वानों ने साम्राज्यवाद को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझाने का प्रयास किया है लेकिन वे इसे उपनिवेशवाद से भिन्न मानते

हैं। उन तरीकों पर भी बल दिया गया है जिनमें साम्राज्यवाद ने विभिन्न ऐतिहासिक चरणों में विभिन्न रूप अपनाए। इकाई की शुरुआत में साम्राज्यवाद की कुछ परिभाषाएँ दी गई हैं। इसके बाद इसमें साम्राज्यवाद के सिद्धांत और पिछली शताब्दी तक विद्वानों द्वारा दी गई साम्राज्यवाद की विभिन्न व्याख्याओं की पड़ताल की गई है। इकाई में साम्राज्यवाद के विभिन्न चरणों पर भी प्रकाश डाला गया है और यह देखा गया है कि यह विभिन्न चरण पूँजीवाद के विस्तार और विकास से किस प्रकार से जुड़े हुए हैं। अंत में इसमें 19वीं और 20वीं शताब्दियों की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति के तौर पर ग्रेट ब्रिटेन का अध्ययन किया गया है।

17.2 साम्राज्यवाद की परिभाषाएं

साम्राज्यवाद की कोई एक आदर्श परिभाषा नहीं है। आइए कुछ प्रचलित परिभाषाओं पर गौर करें।

साम्राज्यवाद का तात्पर्य पूँजीवादी विकास की उन प्रक्रियाओं से है जो पूँजीवादी देशों को विश्व के पूँजीवाद से पूर्व की अवस्था वाले देशों को जीतने और उन पर अपना आधिपत्य करने से संबद्ध हैं।

या

साम्राज्यवाद वह व्यवस्था है जिसके तहत औद्योगिक देश दूसरे अविकसित देशों की घरेलू और विदेशी नीतियों तथा प्रशासन पर राजनीतिक नियंत्रण स्थापित करते हैं। यहां विकसित देशों को 'केंद्रीय देश' और उनके अधीन देशों को 'परिधीय देश' के रूप में समझ सकते हैं।

या

साम्राज्यवाद शब्द का प्रयोग पूँजीवादी विश्व के उन अंतर्राष्ट्रीय व्यवहारों या संबंधों को इंगित करने के लिए किया गया जो 19वीं शताब्दी के अंतिम पच्चीस वर्षों में आरंभ हुए परिपक्व पूँजीवाद की विभिन्न स्थितियों में देखे गए।

अपनी भिन्नताओं के बावजूद यह सभी परिभाषाएं, साम्राज्यवाद को एक **आधुनिक** प्रक्रिया के रूप में सुदृढ़ता से स्थापित करती हैं जो विजय तथा राजनीतिक आधिपत्य के पूर्व–आधुनिक रूपों से स्पष्टतया अलग होती हैं। इस संदर्भ में साम्राज्यवाद की चार महत्वपूर्ण विशिष्टताएँ हैं:–

- उत्पाद पूँजी और लोगों के अंतर्राष्ट्रीय प्रवाह में तेजी से वृद्धि।
- औद्योगिक विकास के विभिन्न स्तरों पर देशों के बीच अन्योन्याश्रित संबंध
- साम्राज्यवादी देशों में विकसित और उच्च प्रौद्योगिकी, तथा
- विकसित पूँजीवादी देशों के बीच प्रतिस्पर्धा

17.2.3 साम्राज्य बनाम साम्राज्यवाद

साम्राज्य और साम्राज्यवाद के अर्थों में भेद करना बहुत आवश्यक है। इतिहास में कई साम्राज्य हुए हैं लेकिन जो साम्राज्य पूँजीवाद के समय रहा हो वह साम्राज्यवाद है।

आधुनिक समय में साम्राज्यवाद के विषय में नया क्या था ? किस बात ने इसे साम्राज्य के प्रारंभिक विस्तारों से भिन्न बनाया ?

प्राचीन काल में शुल्क की वसूली करना ही साम्राज्य का उद्देश्य हुआ करता था। पूंजीवाद के तहत बिजित तथा नियंत्रित देशों के समाज और अर्थव्यवस्थाओं का रूपांतरण हुआ तथा उन्हें इस प्रकार से ढाला गया जिससे वे पूंजीवादी देशों की पूंजी संचय संबंधी जरूरतों को पूरा कर सकें। इस तरह से आधुनिक साम्राज्यवाद का एक मकसद आर्थिक पदानुक्रम में पूंजीवादी देशों को सबसे ऊपर रखना भी था।

17.2.2 साम्राज्यवाद बनाम उपनिवेशवाद

साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के बीच अंतर जानना भी महत्वपूर्ण है। साम्राज्यवाद का इतिहास कुछ विशेष उपनिवेशों के इतिहास से भिन्न है। साम्राज्यवाद विशेषरूप से एक यूरोपीय प्रक्रिया है जबकि उपनिवेशवाद वह

व्यवस्था है जो उपनिवेशों में प्रचलित थी। यह भी कहा जा सकता है कि यूरोपीय साम्राज्यवादी इतिहास में एक आधारिक एकता थी जो सभी साम्राज्यवादी देशों पर लागू होती है।

जब हम साम्राज्यवाद का अध्ययन करते हैं तो हम केंद्रीय देशों पर उसके प्रभाव की पड़ताल करते हैं जबकि उपनिवेशवाद उपनिवेश पर पड़े प्रभाव से संबद्ध होता है। राष्ट्र के लिए साम्राज्य के लाभ औद्योगिक क्रांति का वित्तीय पोषण करने वाली औपनिवेशिक संपत्ति से लेकर उच्च सैन्य प्रौद्योगिकी का विकास और नियंत्रण के तरीके तक हैं जैसे सेना और नौकरशाही और मानवविज्ञान जैसे विषय।

17.3 साम्राज्यवाद का रूप

साम्राज्यवाद औपचारिक भी हो सकता है और अनौपचारिक भी। औपचारिक साम्राज्यवाद में अधिगहन और प्रत्यक्ष शासन शामिल हैं जबकि अनौपचारिक साम्राज्यवाद का अर्थ है उन स्थानीय संभ्रांत लोगों का अप्रत्यक्ष शासन जो औपचारिक रूप से संप्रभु हों लेकिन राजनीतिक दृष्टि से यूरोपीय केंद्र पर आश्रित हों। इसी तरह मोटे तौर पर तीन प्रकार के साम्राज्य होते हैं जो या तो एक के बाद एक रेखिक कालानुक्रम से विद्यमान रहे हों या किसी विशेष ऐतिहासिक समय में एक दूसरे के सह–अस्तित्व में भी हों। यह तीन रूप हैं:–

1) पुर्तगाल और स्पेन जैसे व्यापारिक साम्राज्य जिन्होंने प्रारंभिक विजय के बाद नियंत्रण अपने हाथ में तो लिया लेकिन अंततः औद्योगिक पूँजीवाद के युग में पीछे रह गये।

2) ब्रिटेन और फ्रांस जैसे औद्योगिक साम्राज्य जिनके पास अपने उपनिवेश थे और उन पर पूरा नियंत्रण था।

3) जर्मनी जैसे औद्योगिक साम्राज्य जिनमें या तो औपचारिक उपनिवेश नही थे या कम थे।

इसी के साथ उन विभिन्न ऐतिहासिक चरणों का अध्ययन भी आवश्यक है जिनसे होकर पूँजीवाद का विस्तार हुआ और फलस्वरूप साम्राज्यों की स्थापना हुई। साम्राज्यवाद का बदलता हुआ स्वरूप पूँजीवादी विकास के विभिन्न चरणों पर निर्भर था। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि पूँजीवाद निम्नलिखित पाँच चरणों से होकर गुजरा है:–

1) पंद्रहवीं शताब्दी के अंत से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक – वाणिज्यिक पूँजी में वृद्धि और विश्व वाणिज्य का तीव्र विकास

2) सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से अठारहवीं शताब्दी के अंत तक वाणिज्यिक पूँजीवाद का प्रभावशाली शक्ति के रूप में पूर्ण विकसित होना।

3) देर अठारहवीं शताब्दी से 1870 के दशक तक – औद्योगिक पूँजीवाद का युग

4) 1880 से प्रथम विश्व युद्ध तक – एकाधिकारी पूँजीवाद में वृद्धि, भूमंडलीय विभाजन आदि।

5) प्रथम विश्व युद्ध के बाद – समाजवाद, उपनिवेशवाद का विघटन बहुराष्ट्रीय निगमों का उभरना।

इस दृष्टि से साम्राज्यवाद के चरण और पूँजीवाद की अवस्थाएँ एक दूसरे के साथ चलती हैं। हर चरण की अपनी विशेष साम्राज्यवादी शक्तियों भी है।

	पूँजीवाद की अवस्था	**साम्राज्यिक शक्तियाँ**
1)	वाणिज्यिक पूँजीवाद	पुर्तगाल और स्पेन
2)	औद्योगिक पूँजीवाद	ब्रिटेन, फ्रांस और नीदरलैंड
3)	वित्तीय पूँजीवाद	ब्रिटेन, अमेरिका और जर्मनी

यूरोपीय औपनिवेशिक साम्राज्यों का इतिहास दो परस्परव्यापी कालचक्रों में हुआ। पहला पंद्रहवीं शताब्दी में शुरू हुआ और 1800 के तुरंत बाद समाप्त हुआ और दूसरा अठारहवीं शताब्दी के अंत में शुरू होकर बीसवीं शताब्दी तक

रहा। पहले कालचक्र के दौरान अमेरिका एक उपनिवेश के तौर पर महत्वपूर्ण था तो दूसरे कालचक्र में अफ्रीका और एशिया महत्वपूर्ण थे।

17.5 साम्राज्यवाद के सिद्धांत

साम्राज्यवाद के सिद्धांतों को दो व्यापक श्रेणियों में बाँटा जा सकता है, आर्थिक (जे.ए.हॉबसन, हिल्फर्डिंग, रोजा लक्जमबर्ग और लेनिन) और राजनीतिक (शुम्पीटर, फील्डहाउस, गालाघर और रॉबिनसन)। इन्हें अधिकेंद्रिक (शुम्पीटर, लेनिन, हॉबसन) तथा परिकेंद्रिक (गालाघर एवं रॉबिनसन, फील्डहाउस) भी कहा जाता है। आइए इन्हें एक–एक कर समझें।

17.4 आर्थिक व्याख्याएँ

हॉबसन, हिल्फर्डिंग, रोजा लक्जमबर्ग तथा लेनिन द्वारा दी गईं आर्थिक व्याख्याओं में एक समानता यह है कि उन सबका एक खास राजनीतिक एजेंडा है।

हॉबसन का उद्देश्य ब्रितानी जनता को 'ब्रितानी विदेश के पीछे एक धनिकतंत्रीय प्रक्रिया' अर्थात् उस विस्तारवादी कार्यक्रम की चेतावनी देना था जो केवल उन वित्तीय पूँजीवादियों को संतुष्ट करने के लिए, जो किसी अन्य बात की परवाह न करते हुए अपने निवेशों पर अधिक से अधिक लाभ चाहते थे, आम लोगों से भारी मूल्य ऐंठ रहा था। हिल्फर्डिंग एक जर्मन सामाजिक लोकतांत्रिक व्यक्ति था जो वित्त मंत्री भी था और उसे नाजी के खिलाफ होने के लिए अपनी जान की कीमत भी लगानी पड़ी थी। पोलैंड में जन्मी रोजा लक्जमबर्ग जर्मनी की एक उग्र क्रांतिकारी सामाजिक लोकतांत्रिक नेत्री थीं। प्रमुख बोल्शेविक नेता और 1917 में रूस की क्रांति के जन्मदाता व्लादीमिर लेनिन रूसी लोगों को समझाना चाहते थे कि प्रथम विश्व युद्ध एक साम्राज्यवादी युद्ध है जिससे उनका दूर रहना ही अच्छा होगा।

साम्राज्यवाद (1902) नामक पुस्तक में हॉबसन साम्राज्यवाद को पूँजीवादी व्यवस्था का नतीजा मानते हैं। उनकी अवधारणा कम खपत के सिद्धांत पर आधारित थी। इसके अनुसार कम आमदनी और क्रय क्षमता के कारण

औद्योगिक उत्पादों की खपत घरेलू बाजार में नहीं हो पाती और इसके लिए उत्पादकों को विदेशी उपनिवेश तलाशने पड़ते हैं। यहां से औद्योगिक देशों के मध्य विदेशी बाज़ारों के लिए प्रतिस्पर्धा शुरू होती है जहां पर तैयार माल की खपत हो सके। कम खपत की परिणति अधिक बचत में होती है। इस बचत के निवेश के लिए भी पूंजीवाद देश को उपनिवेश की जरूरत पड़ती है।

हॉबसन निष्कर्ष के तौर कहते हैं 'साम्राज्यवाद के पीछे प्रभावी उद्देश्य प्रत्येक साम्राज्यवादी शासन के भीतर निर्यात और वित्तीय वर्गों द्वारा बाजारों और लाभकारी निवेश की माँग थी।' उन्होंने अन्य उद्देश्यों को गौण बताया चाहे वह सत्ता, गौरव और प्रतिष्ठा हो या 'ध्वज के बाद व्यापार' या फिर देशज लोगों को सभ्य बनाने का लक्ष्य।

रुडोल्फ हिल्फर्डिंग ने 1910 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *डासफिनान्जकापिटाल* (वित्तीय पूँजी) में स्पष्ट किया कि पूँजीवाद की इस अंतिम अवस्था में जिसे वित्तीय पूँजीवाद के नाम से भी जाना जाता है, बड़े बैंक और वित्तीय संस्थान ही औद्योगिक निगमों को नियंत्रित करते हैं। हिल्फर्डिंग की धारणा के अनुसार एकाधिकार पूंजीपतियों को कच्चे माल की आपूर्ति, तैयार माल की खपत के लिए बाजार, और पूंजी निवेश के लिए निकायों के हेतु साम्राज्यवादी विस्तार की सख्त जरूरत थी। प्रत्येक बड़ी यूरोपीय शक्ति एकाधिकारी पूँजीवादी थी इसलिए आर्थिक प्रतिस्पर्धा जल्दी ही राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता बन गई जो तीव्र गति से युद्ध में परिणत हुई।

अक्यूमलेशन ऑफ कैपिटल (1913) (पूँजी का संचयन) शीर्षक से रोजा लक्जमबर्ग का अध्ययन साम्राज्यवादी शक्तियों तथा उपनिवेशों के बीच असमान संबंधों को उजागर करता है। यूरोपीय शक्तियों ने कई बाजारों पर कब्जा किया और निवेश के लाभकारी क्षेत्रों को सुनिश्चित किया। इसके विपरीत उपनिवेश केवल खाद्य पदार्थों तथा कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता ही थे।

इम्पीरियलिज्म, द हाइएस्ट स्टेज ऑफ कैपिटलिज्म (1916) (साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की उच्चतम अवस्था) में लेनिन त देते हैं कि विकसित पूँजीवादी देश पिछड़े हुए देशों में निवेश करते हैं क्योंकि उनका घरेलू निवेश लाभ देने की सीमा तक पहुँच चुका होता है। अपने देश में निवेश करने के लिए अर्थव्यवस्था के विकास और श्रमिकों का जीवन स्तर बेहतर बनाने की आवश्यकता होती है और पूँजीवादियों की इनमें से किसी में भी दिलचस्पी नहीं थी। लेनिन का तर्क यह था कि प्रथम विश्वयुद्ध यूरोपीय शक्तियों के मध्य प्रतिस्पर्धा का परिणाम था और इस प्रतिस्पर्धा का आधार निश्चित रूप से साम्राज्यवादी स्वार्थ थे। उनका इरादा विशुद्ध रूप से राजनीतिक था। वह पूँजीवादी स्वार्थों की पोल खोलना चाहते थे और रूस के लोगों को इस बात के लिए राजी करना चाहते थे कि वे विश्वयुद्ध में भाग न लें।

17.4.1 गैर–आर्थिक व्याख्याएँ

शुम्पीटर की *इम्पीरियलिज्म एंड द सोशल क्लासेस (*1931) (साम्राज्यवाद और सामाजिक वर्ग) उस वामपंथी प्रतिमान से अलग विचार प्रकट करती है जिसने साम्राज्यवाद और पूँजीवाद को एक ही धरातल पर रख कर देखा। उनकी योजना में साम्राज्यवाद और पूँजीवाद स्पष्ट रूप से अलग–अलग प्रक्रियाओं के रूप में देखे गए। शुम्पीटर ने साम्राज्यवाद को एक ऐसी आदिम शक्ति के रूप में देखा जिसका उदय पूंजीवाद से पहले और प्राग् आधुनिक शक्तियों द्वारा हो चुका था। इसके विपरीत पँजीवाद आधुनिक, नव–परिवर्तनशील तथा उत्पादनकारी प्रक्रिया थी जिसे फलने –फूलने के लिए किसी क्षेत्र पर नियंत्रण रखने की आवश्यकता नहीं थी।

जहाँ वामपंथ को मानने वाले लेखकों ने साम्राज्यवाद को एक आर्थिक व्यवस्था के रूप में देखा वहीं शुम्पीटर के अनुसार साम्राज्यवाद राज्य के असीमित विस्तार की राजनीतिक इच्छा पर आधारित होता है। लेकिन 'राजनीतिक इच्छा' पर आधारित परिभाषा के साथ समस्या यह है कि इसे तथ्यों की कसौटी पर जांचना मुश्किल है। इसलिए इस अवधारणा को सही या गलत साबित कर पाना संभव नहीं है। गालाघर और रॉबिनसन ने *''अफ्रीका एंड द विक्टोरयन्स''* में आधुनिक साम्राज्यवाद की आम व्याख्याओं

पर दो आधारों पर सवाल उठाए। उन्होंने 1870 के पहले के और 1870 के बाद के साम्राज्यवादों के बीच अंतर को अमान्य समझा। इसके अलावा, मुक्त व्यापार के साम्राज्यवाद या अनौपचारिक साम्राज्यवाद को उतना ही महत्वपूर्ण समझा गया जितना कि औपचारिक साम्राज्यवाद को समझा गया था। राजनीतिक विस्तार वाणिजिक्यक विस्तार की प्रक्रिया थी – जिसमें यह निहित था कि 'यदि संभव हो तो अनौपचारिक नियंत्रण के साथ व्यापार करो', और जब आवश्यक हो तो औपचारिक शासन के साथ व्यापार करो।'

गालाघर और रॉबिनसन की साम्राज्यवाद की व्याख्या परिधीय देशों पर केंद्रित थी। उनकी दृष्टि में साम्राज्यवाद वह क्रिया थी जो एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका जैसे परिधीय देशों के दबाव से संचालित थी। उपनिवेशों के लिए छीना–झपटी यूरोपीय शक्तियों की एक पूर्व –नियोजित चाल थी जिससे एशिया और अफ्रीका में वे किसी भी क्षेत्र पर कब्जा कर प्रतिद्वंदी देशों को रोक सकें। इस दृष्टिकोण ने यूरोपीय कूटनीति की प्रतिकूलता या विस्तारवादी वित्तीय पूँजीवाद के वृहत् दबावों के संदर्भ में उपनिवेशों के लिए छीना–झपटी की पारंपरिक यूरोपीय–केंद्रिक व्याख्या पर संदेह प्रकट किया।

फील्डहाउस ने साम्राज्यवाद की राजनीतिक व्याख्या प्रस्तुत की। उनके अनुसार आधुनिक साम्राज्यवाद यूरोप में राजनीतिक का परिधीय देशों तक विस्तार था। केंद्र में संतुलन की इतनी अच्छी तरह से व्यवस्था की गई थी किसी भी ओर की सीमा में या अब स्थिति में किसी बड़े परिवर्तन की गुंजाइश संभव नहीं थी। इस गतिरोध के कारण उपनिवेश यूरोपीय देशों के मध्य परस्पर संघर्ष का स्थान बन गए। ब्रितानियों के लिए इसका अर्थ मिस्र और स्वेज नहर के जरिए भारत तक पहुँचने के मार्ग की रक्षा करना था जिसके लिए नील नदी की मुख्य धारा तथा उत्तरी अफ्रीका में एक प्रभावी स्थान पर नियंत्रण स्थापित करने की आवश्यकता पैदा हुई। जर्मनी और फ्रांस के लिए राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्रदर्शन हेतु पृथ्वी के कुछ हिस्सों पर कब्जा जमाना ही साम्राज्यवाद के प्रेरणा बिंदु थे। अंत में फील्डहाउस

कहते हैं कि 'संक्षेप में, आधुनिक साम्राज्यों में उद्देश्य तथा तपरकता का अभाव था, वे कई सदियों से और विशेषकर 1815 के बाद के समय में प्रभावी जटिल ऐतिहासिक शक्तियों को संयोग का नतीजा थे।'

ए.जे.पी. टेलर के अनुसार सत्ता के संतुलन को बनाए रखने के यूरोपीय खेल में उपनिवेशवाद एक मोहरा बन गया था। डॉयल 'कूटनीतिक व्यवस्था का उपनिवेशवाद' जैसे शब्द – समूह का प्रयोग 1879 और 1890 के बीच हुए विकास एवं परिवर्तनों का वर्णन करने के लिए करते हैं। बिस्मा ने 1880 के दशक के प्रारंभिक दौर में इस उम्मीद में उपनिवेशों पर कब्जा किया कि इंग्लैंड के साथ औपनिवेशिक कलह फ्राँस में जर्मनी की विश्वसनीयता बना सकेंगी। अलसास लोरेन की क्षतिपूर्ति के लिए फ्रांस को मुआवज़े के रूप में उपनिवेशों और समुद्र–पार यात्राओं की जरूरत थी। उपनिवेशों के लिए प्रतिस्पर्धा ने इंग्लैंड और इटली के बीच दरार पैदा की और इटली जर्मनी का साथ निभाने को उसके साथ हो लिया।

इस भाग में साम्राज्यवाद को तमाम तरह की व्याख्याओं और सिद्धांतों की मदद से समझने का प्रयास किया गया है। मौटेतौर पर इन्हें आर्थिक और गैर–आर्थिक व्याख्याओं की श्रेणियों में रखा जा सकता है। आर्थिक व्याख्या में अधिक उत्पादन तथा कम खपत से संबद्ध कारण (हॉबसन), वित्तीय पूँजीवाद की आवयकताएँ (हिल्फर्डिंग), उपनिवेशों और साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच असमान विनियम (रोजा लक्जमबर्ग) और पूँजीवाद की उच्चतम अवस्था (लेनिन) जैसी धारणाएँ शामिल हैं। गैर–आर्थिक व्याख्याओं ने साम्राज्यवाद को एक प्राग् आधुनिक आदिम शक्ति (शुम्पीटर) के रूप में देखा या यूरोपीय शक्तियों के बजाय उपनिवेशों (गालाघर एवं रॉबिनसन) में विकास पर संकेंद्रित परिकेंद्रिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया या फिर इसे केवल यूरोप के भीतर हुए राजनीतिक संघर्षों की अभिव्यक्ति की तरह देखा (फील्डहाउस)।

17.5 साम्राज्यवाद की अवस्थाएँ

पिछले खंड में हमने उन विभिन्न तरीकों पर चर्चा की जिनमें यह बात सामने आई कि विद्वानों ने साम्राज्यवाद को कैसे समझा और उसकी क्या–क्या परिभाषाएँ दीं। इस खंड में आइये साम्राज्यवाद में विभिन्न अवस्थाओं में हुए उसके विकास की पड़ताल करें।

17.5.1 वाणिज्यवाद और प्रारंभिक व्यापारिक साम्राज्य

ऐसा क्या था जिससे यूरोप विश्व में अग्रणी बन पाया ? यदि हम सन् 1500 के विश्व को देखें तो यूरोप के अधिकतर देश ओटोमान साम्राज्य, मिंग्स के अधीन चीन और मुगलों के अधीन भारत विकास के समान चरण में ही थे। लेकिन ये एशियाई शक्तियां एक प्रमुख कमी का शिकार थीं। वह कमी उन पर एक केंद्रीकृत सत्ता का प्रभुत्व था जिसमें उनके बौद्धिक विकास के लिए सहायक परिस्थितियाँ नहीं थीं। इसके विपरीत विभिन्न यूरोपीय शक्तियों के बीच प्रतिस्पर्धा से उन्हें नई सैन्य तकनीकों को ईजाद करने के लिए प्रोत्साहन मिला। उदाहरण के लिए लंबी दूरी तक मार करने वाले हथियारों सहित जहाज ने पश्चिम की नौसैन्य शक्तियों को समुद्री मार्गों पर नियंत्रण रखने में मदद की। इस विकसित सैन्य शक्ति के साथ आर्थिक प्रगति ने यूरोप को आगे बढ़ाया और अन्य महाद्वीपों से आगे किया।

अटलांटिक पार व्यापार का विकास अपूर्व था। 1500 से 1550 के बीच यह आठ गुना बढ़ा और 1550 से 1610 के बीच तीन गुना। इस व्यापारिक प्रगति के बाद और इसके परिणामस्वरूप यूरोप में साम्राज्यों, चर्चों तथा प्रशासनिक व्यवस्थाओं की स्थापना का सिलसिला शुरू हुआ। स्पेनी और पुर्तगाली स्पष्ट तौर पर अमेरिका में अपने साम्राज्य को स्थायी रूप से देखते थे। उन्हें अमेरिका से प्राप्त सामान में सोना, चाँदी, बहुमूल्य धातुएँ और मसालों के साथ–साथ तेल, चीनी, नील, तम्बाकू, चावल, रोएँदार खालें, इमारती लकड़ी जैसी सामान्य वस्तुएँ तथा आलू और मक्का जैसी नई पौध भी शामिल होती थी। नीदरलैंड्स में एम्स्टरडम, बेल्जियम में एन्टवर्प तथा ब्रिटेन में लंदन और ब्रिस्टल के प्रमुख बंदरगाहों के आस–पास जहाज निर्माण उद्योग विकसित हुआ। जल्दी ही डच, फ्राँसीसी और अंग्रेज, स्पेनियों तथा पुर्तगालियों के पक्के प्रतिद्वंद्वी बन गए। इस प्रतिस्पर्धा ने जहाजरानी विज्ञान

को प्रोत्साहित किया। सुधरी हुई मानचित्रकला, नौपरिवहन तालिकाओं, दूरबीन तथा वायुदाबमापी प्रगति और भी सुदृढ़ हुई। इस खंड की पिछली दो इकाइयों में व्यापार में अन्य क्षेत्रों पर यूरोपीय प्रभुत्व स्थापित करने में मददगार विज्ञान और प्रौद्योगिकी की कहानी बताई जा चुकी है।

केप ऑप गुड होप से होकर इंडीज तक के मार्ग तथा अमेरिका की खोज बहुत महत्वपूर्ण थी। इसने यूरोप को एक सीमित भौगोलिक तथा मानसिक चारदीवारी से मुक्ति दिलाई। पश्चिमी लोगों तथा पूर्वी सभ्यताओं के प्रभावों को अपने में शामिल कर उनके मध्यकालीन क्षितिज का दायरा बढ़ा। इसके बाद होने वाली खोजों, व्यापार और विजय के परिणाम महत्वपूर्ण थे। प्रत्येक उपनिवेश या व्यापार–केंद्र आर्थिक तौर पर एक नई प्रेरणा थे। अमरीका एक बाजार था और अमेरिका से प्राप्त सोना–चांदी ने यूरोप में धन की आपूर्ति में वृद्धि की तथा आर्थिक और सामाजिक विकास को सुदृढ़ किया। अमेरिका के साथ व्यापार बढ़ा। चार शताब्दियों तक अमेरिका ने यूरोपीयों की जमीन हड़पने की भूख शांत की। सोना और चाँदी वह वस्तुएँ थी जिनसे खोज यात्राओं और विजय प्राप्ति को प्रोत्साहन मिला और अप्रवासी आक्रमण हुए और फिर उनके तुरंत बाद मिशनरी भी वहाँ पहुंचे। अमेरिकी उपनिवेश व्यक्तियों द्वारा स्थापित किए गए। इसमें राज्य, देशभक्ति और मिशन की प्रेरणा की भूमिका अपेक्षाकृत कम थी।

1815 से पहले स्पेन और पुर्तगाल पूर्व प्रतिष्ठित साम्राज्यवादी शक्तियाँ थीं। उनकी श्रेष्ठता केवल इस बात से नहीं तय होती थी कि वे पहले खोजकर्ता थे बल्कि उन्होंने प्रभावी उपनिवेशवाद के पाँच में से चार प्रतिमानों को तैयार किया जो पहले औपनिवेशिक साम्राज्यों की विशिष्टता थे। दोनों देशों ने अपने–अपने उपनिवेशों से भारी मुनाफा कमाया।

पुर्तगाल ने पहले एशिया में और फिर अमेरिका तथा ब्राजील में विशाल साम्राज्य स्थापित किया। 1711 में उसे उपनिवेशों से 72,000 पाउंड स्टर्लिंग के बराबर राजस्व प्राप्त था। यह पुर्तगाली समाज से प्राप्त शुल्क के लगभग बराबर होता था। पुर्तगाली साम्राज्य की एक खास बात यह थी कि उसने

उपनिवेशों और अपने पुर्तगाली समाज में किसी प्रकार का भेद नहीं बरता। 1604 तक अलग से कोई औपनिवेशिक विभाग नहीं स्थापित किया गया था।

स्पेन और पुर्तगाल की तरह फ्राँस ने अमेरिका में कनाडा और लातीनी अमेरिका जैसे क्षेत्रों में अपना विस्तार किया। यह कार्य शासन की मदद से विभिन्न फ्राँसीसियों ने अपने–अपने स्तर पर किया। मदद के पीछे भावना यह थी कि शासक को रसद आपूर्ति होती रहेगी और नौसैन्य शक्ति में वृद्धि होगी। साम्राज्य स्थापित करने का कार्य अधिकृत कंपनियों ने किया। इससे राष्ट्र को फायदा हुआ क्योंकि इस कार्य में न्यूनतम खर्च था। 1660 के बाद उपनिवेश शाही संपत्ति माने जाने लगे और परिणामस्वरूप शाही प्रतिनिधि ही उपनिवेशों में सरकार चलाने लगे। फ्राँसीसी औपनिवेशिक सरकार उतनी ही निरंकुश थी जितनी की स्पेन की सरकार थी। उस समय फाँस एक पूर्ण राजतंत्र था और उपनिवेशों को बिना कोई संवैधानिक अधिकार दिए उन पर शासन कर रहा था। उपनिवेशों के लिए स्थानीय प्रशासन और कानून उस समय फ्राँस में लागू कानून और प्रशासन की तर्ज पर बनाए गए थे। फ्रांस का औपनिवेशिक साम्राज्य उसका अत्यधिक हस्तक्षेप झेल रहा था। फ्राँस ने पुर्तगाल के ठीक विपरीत अपने उपनिवेशों से वित्तीय लाभ नहीं उठाए। ऐसा इस बात के बावजूद था कि 1788 में फ्रांस के कुल निर्यात का दो बटा पाँच से अधिक हिस्सा उसके उपनिवेशों को जाता था। 1789 तक फाँस, भारत और अमेरिका के अपने अधिकतर उपनिवेश ब्रिटेन से हार चुका था। उसकी निम्न दर्जे की नौसैन्य शक्ति उसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी।

कुछ पश्चिमी देशों ने अपने उपनिवेश आस्ट्रेलिया, लातीनी अमेरिका, भारत और अफ्रीका जैसे उष्णकटिबंधी स्थानों में विकसित किए। यूरोपीय लोग अफ्रीका में नहीं बसे। वे अफ्रीका से दास, हाथीदाँत और सोना पाकर संतुष्ट थे। ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था के लिए उपनिवेश महत्वपूर्ण थे। वे कच्चे माल की आपूर्ति करते थे और ब्रिटेन के औद्योगिक उत्पादों के लिए बाजार भी थे। फाँसीसी मंत्री शुआंसल ने खेद प्रकट करते हुए कहा कि यूरोप की

वर्तमान स्थिति में सत्ता के संतुलन को तीन चीजें निर्धारित करती हैं, उपनिवेश, व्यापार और समुद्री शक्ति।

फ्राँस, ब्रिटेन, ऑस्ट्रिया, रूस और प्रशिया जैसी पाँच बड़ी यूरोपीय शक्तियों में ब्रिटेन जल्द ही एक नेता के रूप में उभरा। उसकी कई विशिष्टताएँ थीं। पहली विशिष्टता तो यही थी कि उसके पास एक विकसित बैंकिंग और वित्तीय व्यवस्था थी। यूरोपी की पश्चिमी ओर की उसकी भौगोलिक स्थिति उसे उसकी इच्छानुसार महाद्वीप से दूरी बनाए रखने में मददगार थी। सबसे महत्वपूर्ण बात जिसने ब्रिटेन को विशिष्टता प्रदान की थी वह यह कि ब्रिटेन पहला देश था जहाँ औद्योगिक क्रांति हुई थी। इस बात से ब्रिटेन, यूरोप पर अपना प्रभुत्व जमा सका और उपनिवेश बना सका। बर्नार्ड पोर्टर के शब्दों में वह मेढक के उस पहले अंडे जैसा था जिसमें जीवन शुरू हुआ, वह पहले टैडपोल की तरह था जो एक मेढक बना और वह उस पहले मेढक की तरह था जो तालाब से छलाँग लगा कर बाहर निकला।

शुरुआती साम्राज्यों ने विश्व पर यूरोपीय नियंत्रण के साथ–साथ सीमित संसाधनों का इस्तेमाल करने में यूरोपीय महत्वाकांक्षा और प्रवीणता को भी उजागर किया। इसके अतिरिक्त, डॉयल के अनुसार स्पेन द्वारा उनमें टिकन महाद्वीपों में साम्राज्य स्थापना के पीछे ईसाइयत की प्रेरणा शक्ति भी रही होगी। डॉयल के अनुसार स्पेन और ब्रिटेन ने अपने पूर्व (एशिया) में व्यापार पर ध्यान केंद्रित किया और पश्चिम (अमेरिकी महाद्वीप) में उत्पादन और आवास पर। दोनों के ही लिए उपनिवेशों की जरूरत का राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी तात्कालिक कारणों से कुछ लेना देना नहीं था।

पतन

प्राचीन उपनिवेशवाद की अपनी प्राकृतिक सीमाएँ थीं। बहुमूल्य धातुओं की प्रचुरता में कमी हो रही थी। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों तक स्पेनी और पुर्तगाली शक्तियों का पतन हुआ और उन्हें अपने उपनिवेशों से हाथ धोने पड़े। जहाजरानी पर डच एकाधिकार समाप्त हुआ। ब्रिटेन की उत्कृष्टता के कारण फ्राँस और उसके बीच औपनिवेशिक प्रतिद्वंद्विता समाप्त हुई।

इसके बाद ब्रिटेन साम्राज्य, वित्त तथा व्यापार के क्षेत्र में विश्व में अग्रणी हो गया। एरिक हॉब्सबॉम इसे इस तरह देखते हैं : 'प्राचीन उपनिवेशवाद नये उपनिवेशवाद में विकसित नहीं हुआ। वह ढह गया था और नये उपनिवेशवाद ने उसका स्थान ले लिया।'

आइए अब तक की गई चर्चा को समेटें। सोलहवीं शताब्दी से यूरोप की अमेरिका, अफ्रीका और एशिया पर विजय केवल उसके सामुद्रिक आधिपत्य के कारण संभव हुई। अटलांटिक तटवर्ती देश, पुर्तगाल, स्पेन, फ्राँस, ब्रिटेन और हॉलैंड को उनकी भौगोलिक स्थिति की वजह से जाहिर तौर पर फायदा था। यूरोप का आधिपत्य कई अन्य लोगों के लिए बहुत ही भयंकर था। अमेरिका के मूल निवासियों का सफाया कर दिया गया और लगभग एक करोड़ बीस लाख अफ्रीकी 1500 से 1860 के बीच दास बना दिए गए। इस युग में यूरोप को व्यापारिक पूँजी के विश्व अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण करने से बहुत लाभ पहुँचा। आधुनिक शासन और नौकरशाही जैसे संस्थानों तथा ज्ञान की दुनिया में वैज्ञानिक क्रांति ने एक आधुनिक विश्व की नींव रखी।

17.5.2 औद्योगिक पूँजीवाद – मुक्त व्यापार का साम्राज्यवाद

हॉबसन ने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति को विश्व के इतिहास का वह असाधरण समय बताया है जब ब्रिटेन के इर्द–गिर्द विश्व–अर्थव्यवस्था निर्मित की गई। इस दौर में ब्रिटेन ही विश्व शक्ति था, वह ही साम्राज्यवादी था, केवल वह ही आयातक, निर्यातक और विदेशी पूँजी का निवेशक भी था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल में ब्रिटेन का विश्व की कार्यशाला के रूप में वर्णन सोलहों आने सच साबित होता है क्योंकि ब्रिटेन उस समय अपने लिए कोयले, लोहे और स्टील का अधिकतम उत्पादन करता था। औद्योगिक क्रांति की परिणति हुई एकीकृत उदारवादी विश्व अर्थव्यवस्था में (ब्रिटिश एकाधिकार के कारण भी) और इस सबकी परिणति हुई अविकसित देशों में पूंजीवाद के प्रवेश में।

प्रारंभिक ब्रिटिश औद्योगिक अर्थ–व्यवस्था अपने विस्तार के लिए विदेश से व्यापार पर निर्भर थी। उत्पादों और पूँजी के लिए समुद्र–पार बाजार ढूँढ़ना आवश्यक काम था। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में कपड़ा उद्योग अपने 80 प्रतिशत उत्पादन का निर्यात कर रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल में लौह एवं स्टील उद्योग अपने उत्पादन का चालीस प्रतिशत निर्यात कर रहा था। इनके बदले में ब्रिटेन ने अमेरिका से कपास, आस्ट्रेलिया से ऊन अर्जेंटीना से गेहूँ जैसे स्थानीय उत्पाद ख्रीदे।

अपने साम्राज्य के साथ भी ब्रिटेन का व्यापार फला–फूला। 1840 में ब्रिटेन के वस्त्र निर्यात का 35 प्रतिशत लैटिन अमेरिका में गया। 1873 के बाद ब्रिटिश वस्त्र निर्यात का 65 प्रतिशत एशिया के देशों में गया। इसलिए अपने साम्राज्यी इलाकों में दूसरी शक्तियों के प्रवेश का विरोध करना ब्रिटेन के लिए स्वाभाविक ही था।

नौसैन्य प्रवीणता, वित्तीय पूँजी, वाणिज्यिक उद्यम और कूटनीतिक मैत्री जैसे गुणों को समेटते हुए 1815 तक ब्रिटेन सर्वश्रेष्ठ विश्व शक्ति बन चुका था। ब्रितानी आर्थिक आधिपत्य के अगले दशकों में परिवहन तथा संचार क्षेत्र में बड़े स्तर पर सुधार, एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में औद्योगिक प्रौद्योगिकी का तीव्र अंतरण और निर्मित उत्पादों में असीम वृद्धि हुई जिससे कच्चे माल और कृषि योग्य भूमि के लिए नये–नये क्षेत्र तलाशने को प्रेरणा मिली। वाणिज्यवाद बीत चुका था और उसके साथ शुल्क संबंधी बाधाएँ चूर–चूर हो गईं। अब मुक्त व्यापार नया नारा था जो बजाय सत्ता संघर्ष और प्रतिद्वंद्विता के अंतर्राष्ट्रीय सामंजस्य को करीब लाया।

यूरोप की सैन्य श्रेष्ठता जारी रही। नालमुख बंदूकों में सुधार, नालपृष्ठ बंदूकों, गैटलिंग, मैक्सिम बंदूकों और हल्की तोपों के आने से एक वास्तविक अग्निशस्त्र क्रांति हुई जिसका मुकाबल पारंपरिक समाज नहीं कर सके। नई निर्णायक प्रौद्योगिकी बंदूक थी जो शस्त्र कारखानों में यूरोपीय श्रेष्ठता का प्रतीक थी। हिलेर बेलोक इस संदर्भ में कहते हैं कि, 'कुछ भी हो जाए, हमारे पास मैक्सिम बंदूक है और उनके पास नहीं है।'

औपनिवेशिक साम्राज्यों के क्षेत्र में ब्रिटेन ने प्रतिद्वंद्वियों को बर्दाश्त नहीं किया। 1815 और 1865 के बीच ब्रिटेन के अधीन साम्राज्य में प्रतिवर्ष औसतन एक लाख वर्ग मील की वृद्धि हुई। इस दौरान उपनिवेशों का एक समूह वह था जिसे सिर्फ सामरिक और व्यापारिक कारणों से लिया गया था, जैसे सिंगापुर, आदेन, फाकलैंड द्वीप समूह, हांगकांग और लागोस। दूसरा समूह आवासीय उपनिवेशों का था, जैसे दक्षिण अफ्रीका, कनाडा और आस्ट्रेलिया।

औद्योगिक पूँजीवाद के फैलाव के परिणामस्वरूप निर्मित सामानों विशेषकर वस्त्रों और कपास तथा अनाज जैसे कच्चे माल के आपूर्तिकर्ताओं के रूप में उपनिवेशों की माँग बढ़ी। उपनिवेश एक अधीनस्थ व्यापारिक साझेदार के रूप में उभरे जिससे प्राप्त आर्थिक लाभ को असमान विनिमय पर आधारित व्यापार में लगाया गया। श्रम के इस अंतर्राष्ट्रीय विभाजन ने उपनिवेशों को मजबूर कर दिया कि वे पिछड़ी हुई। तकनीकियों के इस्तेमाल से निम्न श्रेणी के उत्पाद तैयार करें।

बाद के उद्योगपति देश और औपनिवेशिक शक्तियाँ

1860 के दशक तक जर्मनी और अमेरिका जैसे अन्य देश औद्योगीकरण के क्षेत्र में ब्रिटेन के बराबर पहुँच रहे थे। 1870 में विश्व औद्योगिक उत्पादन के आँकड़ों के अनुसार जर्मनी का हिस्सा 13 प्रतिशत और अमेरिका का 23 प्रतिशत था। महाशक्तियों के बीच ब्रिटेन के अवनत होते आधिपत्य का अंदाजा निम्नलिखित तालिका को देख कर हो सकता है।

तालिका

औद्योगीकरण के स्तर

	1880	1900	1913	1920	1938	1938 में स्थान

1.	ग्रेट ब्रिटेन	87	100	115	122	155	दूसरा
2.	अमेरिका	38	69	126	182	167	पहला
3.	फ्राँस	28	39	59	82	73	चौथा
4.	जर्मनी	25	52	85	128	144	तीसरा
5.	इटली	12	17	26	44	61	पाँचवां

1900 में ग्रेट ब्रिटेन निर्विवाद रूप से विश्व में अग्रणी था। उसका साम्राज्य एक करोड़ बीस लाख वर्ग मील तक फैला हुआ था और विश्व की एक चौथाई आबादी उसके अधीन थी।

जर्मनी, इटली, अमेरिका, बेल्जियम और जापान जब उपनिवेशों की दौड़ में शामिल हुए तब 1880 के दशक से ब्रिटेन ने उपनिवेशों के लिए अपनी दौड़ की गति तेज की। विभिन्न शक्तियों के बीच हो रही प्रतिस्पर्धा ने नये उपनिवेशों के लिए दौड़ की शुरुआत की क्योंकि प्रत्येक शक्ति अपने लिए बाजार, कच्चा माल तथा निवेश को सुनिश्चित करना चाहती थी। पिछड़े क्षेत्रों को उनके कच्चे माल की आपूर्ति पर नियंत्रण रखने के लिए कब्जे में कर लिया गया। मलाया रबर और टिन तथा मध्य पूर्व तेल की आपूर्ति करता था। एक कठोर प्रतिस्पर्धी दुनिया में साम्राज्य ही एक सहारा था।

समूचे विश्व को उपनिवेशों, अर्ध–उपनिवेशों और प्रभाव के दायरों में टुकड़े–टुकड़े करने वाली इन प्रतिद्वंद्विताओं ने यूरोप को भी पूर्णतया

शस्त्र–सज्जित गुटों में बाँट दिया जिसका अवश्यंभावी परिणाम प्रथम विश्व युद्ध था।

प्रथम विश्व युद्ध जर्मनी तथा ओटोमान साम्राज्य की पराजय के साथ समाप्त हुआ और साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच उपनिवेशों का एक बार फिर विभाजन हुआ। इसके बाद यह शक्तियाँ 'ट्रस्टी' भी कहलाईं। 1929 की विशाल मंदी के कारण फिर से साम्राज्यवादी शक्तियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन हुआ। मुक्त व्यापार के दिन अब लद चुके थे, नया नारा था संरक्षणवाद।

17.5.3 वित्तीय पूँजीवाद

पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद की अवस्थाएँ परस्परव्यापी हो सकती हैं जैसा कि औद्योगिक पूँजीवाद तथा वित्तीय पूँजीवाद के मामलों में हुआ जहाँ एक अवस्था ने दूसरी का स्थान नहीं लिया बल्कि एक अवस्था दूसरी में अध्यारोपित हो गई। व्यापार और वित्त का अनौपचारिक साम्राज्य औद्योगिक पूँजीवाद में जोड़ा गया। इस तरह से साम्राज्यवाद की एक नई अवस्था की शुरुआत हुई।

1860 के बाद विश्व अर्थव्यवस्था में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। औद्योगीकरण यूरोप के कई देशों, अमेरिका और जापान में फैला जिसके परिणामस्वरूप विश्व में ब्रिटेन का औद्योगिक आधिपत्य समाप्त हुआ। ब्रिटेन के लिए यह एक धक्के जैसा था। उसने अल्पविकसित विश्व के अधिकतर हिस्सों में फैले अनौपचारिक साम्राज्य बदले अपने अधीन पुरानी अर्थव्यवस्थाओं सहित औपचारिक साम्राज्य का एक चौथाई हिस्सा अपने पास रखा।

उद्योगों में वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग ने औद्योगीकरण की प्रक्रिया को तेज किया। इस दौरान आधुनिक रसायन उद्योगों, इंजिन में ईंधन के रूप में पेट्रोलियम के प्रयोग और खोजों में बिजली के प्रयोग में वृद्धि हुई। इसके अलावा अंतर्राष्ट्रीय यातायात के साधनों में हुई क्रांति के कारण विश्व बाजार का और अधिक एकीकरण हुआ।

उपनिवेशों और अर्ध–उपनिवेशों के बढ़े हुए शोषण तथा अपने देश में उद्योग और व्यापार के विकास के कारण बड़े स्तर पर पूँजी का संचय हुआ। यह पूँजी कुछ ही लोगों तक सीमित थी। ट्रस्ट तथा उत्पादक–संघ बनाए गए और बैंकों की पूँजी का औद्योगिक पूँजी में विलय कर दिया गया। इस पूँजी के लिए विदेशों में बाजार ढूँढ़ने की आवश्यकता पैदा हुई।

जब वित्तीय पूँजी का बोलबाला था उसके पहले भी पूँजी का सार्थक निर्यात होता था। 1850 तक ब्रिटेन का वार्षिक पूँजी निर्यात तीन करोड़ पाउंड था। 1870 से 75 तक ब्रिटेन का यह पूंजी निर्यात बढ़कर 7.5 करोड़ पाउंड हो गया। इस निर्यात से पांच करोड़ पाउंड की आमदनी हुई जो विदेश व्यापार में लगाई गई। इससे उपनिवेशों से व्यापार के लिए पूँजी का प्रबंध हुआ जहाँ से बड़ी मात्रा में कच्चा माल खरीदा गया और उतनी ही मात्रा में औद्योगिक उत्पाद भेजे गए। इस संदर्भ में पॉल केनेडी बेझिझक कहते हैं कि लंदन इस समय विश्व पर छाया हुआ था।

विश्व अर्थव्यवस्था पर एकाधिकारी पूंजी की जकड़ उन आँकड़ों से समझी जा सकती है जिनके अनुसार 1914 तक यूरोपीय देशों ने विश्व के 84.4 प्रतिशत से ऊपर भाग पर नियंत्रण कर रखा था। पूँजी व्यापार और वित्त के अंतर्राष्ट्रीय संजाल के केंद्रों अर्थात् लंदन और न्यूया में संकेंद्रित थी और यहीं से आगे बढ़ती थी।

इन देशों ने साम्राज्य का इस्तेमाल राजनीतिक तथा वैचारिक प्रयोजनों के लिए भी किया। साम्राज्य के महिमा–मंडन और पश्चिमी देशों में विकसित अतिराष्ट्रवाद ने इन देशों के अंदरूनी सामाजिक तनावों को भी कम करने में मदद की। बिपन चंद्र कहते हैं कि 'ब्रितानी साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता' जैसे नारे ने उन ब्रितानी श्रमिकों में आत्मगौरव की भावना संचारित की जिनके छप्परों पर सूर्य वास्तव में कभी–कभार ही चमकता था। प्रत्येक देश ने अपने साम्राज्य को विभिन्न तरीकों से उचित ठहराया जैसे उदाहरण के लिए फ्राँसीसियों का 'सभ्यता मिशन' और जापान का एशियावाद।

1870 से 1913 के बीच लंदन विश्व का वित्तीय तथा व्यापारिक केंद्र था। 1913 तक विदेशों में ब्रिटेन की साख चार अरब पाउंड की थी। बीसवीं सदी के आरंभ में अधिकांश अंतर्राष्ट्रीय व्यापार ब्रितानी जहाजों के द्वारा ही हुआ करता था। प्रथम विश्व युद्ध के बाद अमेरिका ने ब्रिटेन का यह स्थान ले लिया। अमेरिका सबसे प्रबल पूँजीवादी अर्थव्यवस्था बन गया। वह विश्व का सबसे बड़ा उत्पादक, विदेशी पूँजी निवेशक, व्यापारी और साहूकार बन गया और अमेरिका का डॉलर मानक अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा बन गया।

बीसवीं शताब्दी के मध्य से औपचारिक उपनिवेशवाद का अंत होना शुरू हुआ। साथ ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों, अंतर्राष्ट्रीय दाता एजेंसियों और अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रभाव के समूचे तंत्र का विकास हुआ। इस प्रक्रिया को सामान्यतः नव–उपनिवेशवाद कहा जाता है।

17.6 वह साम्राज्य जहाँ सूर्य कभी अस्त नहीं होता

आइये ब्रिटेन और उसके साम्राज्य, विशेषकर भारत का, अध्ययन करते हुए इस बात का मूल्यांकन करें कि किसी साम्राज्यवादी देश को उसके अधिगृहीत साम्राज्य से क्या लाभ होते हैं।

बिपिन चंद्र हमारा ध्यान औद्योगिक क्रांति और भारत में ब्रितानी साम्राज्य का जन्म एक साथ होने की ओर आकृष्ट करते हैं जो निश्चय ही इत्तफाक नहीं है। 1757 में बंगाल पर विजय ने भारत के व्यवस्थित शोषण को संभव किया और औद्योगिक क्रांति का आरंभ 1750 के आस–पास हुआ। 1765 के बाद भारत से संपत्ति का जाना या पूँजी के इकतरफे अंतरण से ब्रितानी राष्ट्रीय आय की दो से तीन प्रतिशत प्राप्ति हुई जबकि ब्रितानी राष्ट्रीय आय का लगभग पांच प्रतिशत हिस्सा ही निवेश किया जा रहा था।

19वीं शताब्दी में भारत ब्रितानी उत्पादनकर्ताओं और आपूर्तिकर्ताओं के खाद्यान्न और कच्चे माल का प्रमुख बाजार बना। भारत की अफीम चीन में बेची जाती थी अर्थात् चीन के साथ ब्रिटेन का यह त्रिकोणीय व्यापार था। रेल यातायात पूँजी निवेश का एक बड़ा क्षेत्र था। ब्रिटेन का अंतर्राष्ट्रीय भुगतान घाटा भारतीय निर्यातों से प्राप्त विदेशी पूँजी से पूरा किया जाता

था। भारत के तटीय और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर नियंत्रण होने की बदौलत ब्रितानी जहाजरानी ने दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की की।

इस चरण में भारत ने ब्रितानी पूँजीवाद के विकास में निर्णायक भूमिका निभाई। ब्रितानी उद्योग, विशेष रूप से वस्त्र उद्योग निर्यात पर बहुत हद तक निर्भर थे। 1860 से 1880 के दौरान ब्रिटेन के वस्त्रोद्योग के लगभग 20 प्रतिशत और कुल निर्यात की 10 से 12 प्रतिशत ब्रितानी खपत भारत में होती थी।

1850 के बाद भारत भी रेलगाड़ियों के डिब्बे, पटरियों और रेलगाड़ी से संबद्ध अन्य सामान का एक बड़ा आयातक बन गया था। इसके अलावा भारतीय सेना ने एशिया और अफ्रीका में ब्रितानी उपनिवेशवाद को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इस दौरान भारतीय संपत्ति और पूँजी का ब्रिटेन में जाना जारी रहा।

इंग्लैंड की भारतीय उपनिवेश में विशेष दिलचस्पी थी क्योंकि भारत उसे कपड़े का बाजार उपलब्ध कराता था और चीन के साथ होने वाले निर्यात से बनी हुई अफीम के व्यापार को सुदूर–पूर्व में नियंत्रित करता था। ब्रिटेन से 'अच्छा' प्रशासन पाने के लिए भारत के भुगतान अर्थात् होम चार्जेज और भारतीय सरकारी उधार के ब्याज के भुगतान ब्रितानी भुगतान घाटे को पूरा करने के लिए महत्वपूर्ण थे।

भारत ने अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय केंद्र के तौर पर ब्रिटेन की स्थिति मजबूत की। भारत के अन्य विश्व के साथ व्यापार लाभ और इंग्लैंड के साथ हुए व्यापार घाटे ने इंग्लैंड को उसके चालू खाते से उसके अंतर्राष्ट्रीय भुगतान करने में मदद की। भारत की मुद्रा बचत ने भी ब्रिटेन की मदद की। इसीलिए भारत में मुक्त व्यापारी भी औपचारिक नियंत्रण चाहते थे।

ब्रितानी ताज पर चमकते रत्न की तरह भारत को प्रस्तुत करने ने भी साम्राज्यवाद की विचार धारा में अहम् भूमिका निभाई। ब्रितानी सत्तारूढ़ वर्ग उस समय भी अपनी राजनीतिक सत्ता बनाए रख पाए जब वह अंदरूनी वर्ग–संघर्ष से जूझ रहे थे। इसलिए 'ब्रितानी साम्राज्य का सूर्य कभी अस्त

नहीं होता' के नारे में निहित गर्व और महिमामंडन ने उन मजदूरों को भी संतुष्ट रखा जिनकी झोपड़ियों में वास्तविकता में सूर्य कभी चमका ही नहीं। एक और पहलू में, जिसकी अक्सर अवहेलना की जाती है, भारत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत ने अपने ऊपर विजय का सारा खर्च वहन किया। उसके रेल, शिक्षा, आधुनिक कानूनी व्यवस्था, सिंचाई के विकास और देश के आंतरिक हिस्सों में प्रशासन की विस्तृत पहुँच का खर्च वहन किया।

अंत में, 1870 के बाद जब विश्व के विभाजन के लिए हो रहा संघर्ष तीव्र हुआ तब भारत ब्रितानी साम्राज्यवाद का सिपाही बना। भारत ने ब्रितानी साम्राज्यवाद के विस्तार और अनुरक्षण के लिए मानव संसाधन और सामग्री दोनों ही उपलब्ध कराए। अफगानिस्तान, मध्य एशिया, तिब्बत, फारस का खाड़ी क्षेत्र, पूर्वी अफ्रीका, मिस्र, सूडान, बर्मा, चीन और किसी हद तक दक्षिण अफ्रीका भी भारतीय लोगों तथा संपत्ति के बल पर ब्रितानी प्रभाव के दायरे में रखे गए या लाए गए। ब्रितानी भारतीय सेना ही सबसे बड़ी सैन्य टुकड़ी थी जो ब्रिटेन को उपलब्ध थी। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जैसे ही ब्रिटेन ने भारतीय सेना और भारतीय वित्त पर से अपना नियंत्रण खोया एशिया और अफ्रीका में उसका साम्राज्य ढह गया।

17.7 सारांश

हॉब्सबॉम ने पंद्रहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से लेकर बीसवीं शताब्दी के मध्य तक के विश्व इतिहास का वर्णन यूरोपीय शक्तियों के आधिपत्य के उत्थान और पतन के रूप में किया है। ब्रिटेन निर्विवाद रूप से पहली विश्व शक्ति थी। 1870 से इसे यूरोप के ही औद्योगीकृत और सैन्य तथा आर्थिक शक्ति बढ़ाने वाले अन्य देशों की चुनौती का सामना करना पड़ा। जब इस आधिपत्य की औपचारिक रूप से समाप्ति हुई तब भी ब्रिटेन का प्रभाव और उसके बाद अमेरिका का प्रभाव जारी रहा फिर चाहे वह बहुराष्ट्रीय बैंक और वित्तीय संस्थान हों या संसदीय लोकतंत्र और फुटबॉल संघ। यह इकाई

इसलिए आधुनिक समय में इन भू–राजनीतिक शक्तियों के विभिन्न रूपों के आधिपत्य को समझने का प्रयास है।

17.8 अभ्यास

1) साम्राज्यवाद की विभिन्न सैद्धांतिक व्याख्याएँ क्या है ? संक्षेप में चर्चा करें।

2) उन विभिन्न ऐतिहासिक चरणों की चर्चा करें जिनसे होकर साम्राज्यवाद के वैश्विक स्तर पर विभिन्न रूप सामने आए।

3) ब्रितानी साम्राज्यवाद के विस्तार में भारत एक महत्वपूर्ण उपनिवेश क्यों था ?

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY